मैं नीर भरी दुख की बदली महादेवी वर्मा

प्रस्तुत गीत रहस्यवादी कार धारा से संबद्ध भावता तथा तन्मयता का प्रतिपादक है इसका पर धारा में कवि वसीम होकर भी असीम से अपना भावात्मक संबंध स्थापित कर लेता है उनके जीवन का क्षण प्रति क्षण उस व्यापक चेतना को अपने में प्राणों में भरकर विश्व जीवन में एकात्म कथा अनुभव करता है प्रकृति तत्वों पर चेतना का आरोप अपनी नश्वरता का विश्वास किंतु आसींद अव्यक्त की सत्ता में आस्था तथा उसे पाने के लिए करुणा तन्मयता तथा समर्पण रहस्यवादी काव्यधारा की बहुचर्चित किंतु मुख्य विशेषताएं हैं विश्व के जड़ चेतन से अधिक भावात्मक प्रवृत्तियों को संबंध करके ईश्वर के कवियों ने जिन भाव चित्रों की सृष्टि की है वे सभी अत्यंत रोचक सरस तथा स्वाभाविक है इस गीत में कवित्री ने नाशवान जीवन को जल से भरपूर बदली के सामने में उपस्थित करते हुए अपने प्रकृति प्रेम दार्शनिक गंभीरी तथा कल्पना वैभव को व्यक्त किया है

1. "मैं नीर भरी............. निर्झरिणी मचली।"

शब्दार्थ : स्पंदन -कंपन, निस्पंद - स्थिर, क्रंदन - विलाप, निर्झरिणी - सरिता,

बिरहाकुल प्रेयसी की आंखों से अविरल बहने वाली अश्रुधारा, धड़कनों में प्रिय की स्मृति और उस पर वेदना की अभिव्यक्ति करता हुआ अति क्रंदन देखकर कवयित्री उस पर सजल बदली का आरोप करती हुई उसका परिचय देती हुई जैसे स्वयं को ही उस करुणापूरित साधिका के रूप में प्रस्तुत करती हुई कहती है।

वह जल से परिपूर्ण दुख की ऐसी बदली है जो निरंतर अश्रु बहाती रहती है। उसकी धड़कनों में वह निस्सीम, व्यापक, शुद्ध, स्थिर रूप बस गया है। उसके सौंदर्य तथा आकर्षण से अभिभूत मन बिरह में क्रंदन करता है, जिसे यह दुखी संसार सुनता है। प्रसन्न होता है। अथवा शहृदयता के अभाव में केवल हंस देता है। प्रियतम की बाट जोहते हुए नेत्र दीपकों के समान जलते हुए एकटक उसी ओर निहारते रहते हैं, मानो प्रियतम की स्मृति में आंखों से जैसे कोई सरिता ही उद्दान वेग से चलकर वह रही हो।

बादल में सजलता तथा सरसता होने पर भी बिजल की धड़कनें तो होती ही रहती हैं, बादलों में उठने वाली ध्वनि वस्तुतः उसका क्रंदन ही है। किंतु विश्व तो उसमें केवल आनंद ही अनुभव करता है। निरंतर वर्षा होने से जिस प्रकार निर्झर फूट पड़ते हैं उसी प्रकार मन में चिरंतन वियोगजन्य व्यथा से आंसू तो प्रवाहमान रहते हैं। इसी प्रकार वियोगिनी की भावनाओं का सादृश्य बादल में उस रहस्यात्मकता का परिचायक है। जिसे हिंदी साहित्य को प्रेम, सौंदर्य, करुणा, दर्शन तथा कल्पना रूपी काव्य मिला।

2 . "मेरा पग पग ....अंकुर बन निकली।"

शब्दार्थ : दुकूल - वस्त्र, दुपट्टा, मलय - चंदन, सुगंधित। बयार - वायु।

वियोग में अपने को प्रकृति के व्यापक सौंदर्य तथा वहुविध रूपों से निर्मित अथवा प्रेरित मानकर ससीम प्रेमिका उस असीम की छाया प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते हुए कहती है।

उसके प्रत्येक चरण में प्रगति का संगीत भरा हुआ है। श्वास-प्रश्वास से स्वप्न सौंदर्य को सजाने वाला आलोकित, सुगंधियुक्त, पराग बिखरता है। आकाश के नए इंद्रधनुषी रंग प्रेमिका का आंचल निर्माण करते हैं। सुगंधित वायु भी उसी की छाया में पली है। आकाश में बादल छा जाने पर समस्त वातावरण संगीत, आनंद, मस्ती तथा नवीन उत्साह और सौंदर्य से पूर्ण हो जाता है। वायु भी सुगंधित होकर विश्व को सुवाषित करती है। ऐसे समय में सूक्ष्म ब्रह्म की उपाधिका महादेवी जी ने अपने को इतना सीमित किंतु आदर्श तथा कर्तव्य की दृष्टि से व्यापक मना लिया है कि उन्हें अपने व्यक्तित्व की प्रतिछाया ही समस्त प्रकृति पर आच्छादित दिखाई पड़ती है। इससे कवयित्री की रहस्मयता, सरसता तथा सौंदर्य विधायिनी शक्ति का पूर्ण उन्मेष दिखाई पड़ता है।

3. "मैं क्षितिज-भृकुटी.................. अंत खिली"

शब्दार्थ : भृकुटी - भौंहे, शुधि - स्मृति, आगम - आना, सिहरन- कंपन।

दुख, वेदना तथा वियोगजन्य आंसुओं को ही अपना स्वरूप समझकर वियोगिनी बदली सी बनकर विश्व जीवन में व्याप्त हो जाती है। हर समय प्रतीक्षा में आंखें बिछाए पलकों में उसके सौंदर्य की कल्पना तथा स्मृति जन्य आकुलता से युक्त वियोगिनी अपना परिचय देते हुए कहती है।

वह क्षितिज रूपी भृकुटी पर वेदना उदासी तथा निराशा की मालिनता लेकर आती है, चिंता का बोझ हर समय आंखों पर उसी प्रकार रहता है जैसे आकाश में बादल घिर कर अपनी भूमिलता में झुक जाते हैं या करुणापुर्ण बदली विश्व के नीरस, उदास तथा अभावग्रस्त जीवन में सरसता की वर्षा करती है। जिस प्रकार शुष्क धरती पर बरसकर जल सरसता प्रदान करता है तो तृण, तरु-पल्लवों पर जीवन की नवीनता के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं। उसी प्रकार यह करुणा विश्व जीवन में नवीन भावनाओं का उन्मेष करती है। यह बदली अचानक आती है। इसके आगमन का मार्ग अथवा लौटने वाले पद चिन्हों का भी कुछ ज्ञान नहीं होता। बदली के आगमन की स्मृति केवल संसार में संचरण करती हुई हिरण की मधुरता में ही होती है। जिस प्रकार जीवन में आगमन की दिशा का किसी को ज्ञान नहीं होता और न ही उसके प्रणय के चिन्ह मिलते हैं, केवल उसके करुणा पूर्ण भावों अथवा कार्यों की स्मृति ही शेष रह जाती है। उसी प्रकार वियोगिनी साधिका की संवेदनाएं ही सृष्टि को भावात्मक तथा करुणेश को पाने के लिए प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं।

4. "विस्तृत नभ का कोई कोना ....मिट आज चली।

एकाकी, अभावग्रस्त तथा वियोग में ही जीवन व्यतीत करते हुए बिरहाकुल आत्मा अपनी क्षणभंगुर का तथा असमर्थता का आभास पा लेती है। चिरंतन विरह-साधना में तल्लीन रहते हुए जिस एकाकी भाव की अनुभूति होती है। उसे अभिव्यक्त करते हुए कवयित्री कहती है।

इस विशाल, विस्तृत तथा विराट संसार की समस्त वैभव, विलास, सुख तथा आनंद प्रदान करने वाली सामग्रियों में उसका अपना कुछ भी नहीं। किसी भी पदार्थ के साथ अपनत्व का संबंध स्थापित नहीं हो सकता। बदली का क्या अस्तित्व उसका परिचय अथवा इतिहास तो केवल इतना ही है कि वह कल उमड़ी थी और आज समाप्त हो गई है। जीवात्मा संसार में आती है कुछ दिन व्यतीत करके चली जाती है। उसका कुछ भी तो अस्तित्व शेष नहीं रहता। जीव जिन पदार्थों से अपनी घनिष्ठता स्थापित करना चाहता है। वह सभी तत्व उसका साथ नहीं देते। जीव से ही विविध अनुभूतियों का उपभोग करते करते अंत में यहां से चल देता है। शेष रह जाता है उसके कार्यकलाप का प्रभाव जो समयांतर पर स्मृतियों को भी नि:शेष कर देता है।